ओ३म्

नमो निर्भ्रमाय जगदीश्वराय ।

अथ

अनुभ्रमोच्छेदन ॥

श्रीमत्स्वामिदयानन्द सरस्वतीजी के

शिष्य भीमसेन शर्म्मा ने

राजा शिवप्रसादजी के द्वितीय निवेदन के उत्तर में

बनाया॥

अजमेर नगरस्थ

वैदिक यन्त्रालय में छापकर प्रकाशित किया.

संवत् १९७३.

57

(पञ्चमवार) (मूल्य ।)॥

ओ३म् ॥

अनुभ्रमोच्छेदन ॥

यस्या नरो भ्रंश्यति वेदवाक्यात्तया हि युक्तं जनसेनया यत्।
तन्नाम यस्यास्ति महोत्सवं स त्वनुभ्रमोच्छेदनमातनोति ॥ १ ॥

-भूमिका-

मैंने विचारा था कि राजाजी और स्वामीजी ने एक २ बार लिखा है आगे इसका प्रपञ्च न बढ़ेगा परन्तु वैसा न हुआ और उनके अनुगामी लोगों ने समाचारपत्रों को भी गर्जाया और बहुत योग्यायोग्य वाच्यावाच्य भी लिखना न छोड़ा और मैंने यह जान भी लिया कि स्वामीजी अपने नाम से इसपर कुछ भी न लिखें और न छपवावेंगे क्योंकि इसपर श्रीयुत स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती और बालशास्त्रीजी की सम्मति नहीं लिखी तथा अन्य किसी आर्य्य ने भी इसके प्रत्युत्तर में न लिखा यह बात ठीक है कि स्वामीजी को तो इस पर लिखना योग्य ही नहीं क्योंकि वे अपनी पूर्व प्रतीक्षा से विरुद्ध क्यों करें जब ऐसा हुआ तब मैं यथामति इस पर लिखने में प्रवृत्त हुआ। यद्यपि इन महाशयों के सन्मुख मेरा लेख न्यूनास्पद है तथापि अन्तःकरण से पक्षपात छोड़कर देखने से कुछ इससे भी तत्त्व निकलेगा और जो कुछ इसमें भूल चूक रहेगी उसको सज्जन महात्मा लोग सुधार लेंगे अब जो राजा शिवप्रसादजी की यह प्रतिज्ञा है कि अब आगे इस विषय में कुछ न लिखा जायगा तो मुझ को भी आगे लिखना अवश्य न होगा जो राजाजी ने भ्रमोच्छेदन पर दूसरा भाग छपवाया है उसमें स्वामीजी के लेख पर निरर्थक आदि दोष दिये हैं उन और इन दोनों पुस्तकों के लेख को जब बुद्धिमान् लोग पक्षपात रहित होकर देखेंगे तब अवश्य निश्चय करलेंगे कि कौन सत्य और कौन असत्य है ॥

इति भूमिका ॥

देखिये राजाजी के प्रिय और सुन्दर लेख को निवेदन पहिला पृष्ठ १ पंक्ति ११ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका मंगा के पृष्ठ ६ से ८८ तक देखा। विचित्र लीला दिखाई दी आधे २ वचन जो अपने अनुकुल पाये, ग्रहण किये हैं और शेषार्द्ध का, जो प्रतिकूल पाये, परित्याग,

उन आधे अनुकूल में भी जो कोई शब्द अपने भाव से विरुद्ध देखे उन के अर्थ पलट दिये। पृष्ठ ४ पंक्ति ७ ऐसा न हो कि (अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः) के सदृश केवल दयानन्दजी के भाष्य और भूमिका ही की लाठी थांभे किसी अथाह गढ़े वा घोरनरक-कुण्ड में जा गिरें। नि० २ पृष्ठ २। पंक्ति २४ खेद की बात है क्यों वृथा इतना कागज़ बिगाड़ा। पृष्ठ ५ पंक्ति २५ निदान जब मैंने गोतम और कणाद के तर्क और न्याय से न अपने प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर पाया और न स्वामीजी महाराज की वाक्यरचना का उससे कुछ सम्बन्ध देखा डरा कि कहीं स्वामीजी महाराज ने किसी मेम अथवा साहब से कोई नया तर्क और न्याय रूस, अमरीका अथवा और किसी दूसरी विलायत का न सीख लिया हो। इत्यादि वचन जो ये राजा शिवप्रसादजी ने अपने दोनों निवेदनों में लिखे हैं क्या इन को सुवचन शान्तीप्रदान कागज़ बिगाड़ना आदि कोई भी मनुष्य न समझेगा ? । मैंने राजा शिवप्रसादजी के दोनों निवेदनों और स्वामीजी के भ्रमोच्छेदन को भी देखा। प्रथम निवेदन में जो २ प्रश्न राजाजी के थे उस २ का उत्तर भ्रमोच्छेदन में यथायोग्य है ऐसा मैं अपनी छोटी विद्या और बुद्धि से निश्चित जानता हूं राजाजी और उन के साक्षियों की विशालबुद्धि है इसलिये उन के योग्य ठीक २ उत्तर न हुए होंगे। इसमें क्या अद्भुत है अब मैं अपनी अल्प विद्या और बुद्धि के अनुसार द्वितीय निवेदन के उत्तर में थोड़ासा लिखता हूं। निवेदन दूसरा पृ० ४ पङ्क्ति १६ भला सूर्य्य और घड़े की उपमा संहिता और ब्राह्मण में क्योंकर घट सकेगी उधर सूर्य्य के सामने कोई आधा घंटा भी आंख खोल के देखता रहे अन्धा नहीं तो चक्षुरोग से अवश्य पीड़ित होवे इस दृष्टान्त से राजाजी का यह अभिप्राय झलकता है कि वेद दिनभर भी आंख खोल के देखा करे तो न अन्धा और न नेत्ररोग से युक्त होता है यहां उनका ऐसा अभिप्राय विदित होता है कि यह दृष्टान्त स्वामीजी का यहां घट नहीं सकता। जहांतक विचार के देखते हैं तो यही निश्चय होता है कि दृष्टांत का साधर्म्य वा वैधर्म्य गुण ही दार्ष्टान्त में घटता है सब गुण कर्म स्वभाव कभी नहीं (जैसे साध्य साधर्म्यात्तद्धर्मभावी दृष्टान्त उदाहरणम्) न्या० अ० १। आ० १। सू० ३६ (तद्विपर्य्ययाद्वाविपरीतम्) न्या० अ० १। सू० ३७। शब्दोऽनित्य इति प्रतिज्ञा उत्पत्तिधर्मकत्वादिति हेतुः। उत्पत्तिधर्मक स्थाल्यादि द्रव्यमनित्यमिति दृष्टान्त उदाहरणम्। यह शान्तवृत्ति से देखने की बात है कि शब्द में अनित्यत्व धर्म साध्य है क्योंकि उत्पत्ति धर्मवाला होने से जो २ पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे २ सब अनित्य हैं। जैसे स्थाल्यादि द्रव्य उत्पत्ति धर्मवाले होने से अनित्य हैं वैसे कार्य्य शब्द भी अनित्य हैं यहां केवल स्थाल्यादि पदार्थों का

उत्पत्ति धर्म ही कार्य शब्द में दृष्टान्त के लिये घटा के कार्य शब्दों को अनित्य ठहराया है यह तो कोई भी नहीं कह सकता कि घट पटादि पदार्थों में चक्षु से दीखना स्थूल कठोर और अन्धेर में दीपक की अपेक्षा रहना आदि विरुद्ध धर्म हे इसलिये उनका दृष्टान्त शब्द में नहीं घटेगा वा शब्द में भी वे धर्म हों कि दीपक जला के शब्द देखा जावें राजाजी को अन्धेरे में दीपक से शब्द देखना उसमें पानी आदि लाना चाहिये वा इस दृष्टान्त ही को न माने तो ऐसा दृष्टान्त कोई न मिलेगा कि जिसमें दार्ष्टान्त के सब धर्म बराबर मिल जावें। और जो कोई पदार्थ ऐसे भी हो कि जिनके सब धर्म बराबर मिलें तो उनका परस्पर अभेदान्वय होने से उनमें दृष्टान्त दार्ष्टान्त तथा उपमान उपमेयभाव कुछ भी न बन सकेगा। अब यहां प्रकृत में यह आया कि वेद को सूर्य का दृष्टान्त दिया है तो सूर्य अपने प्रकाश में किसी की अपेक्षा नहीं रखता वैसे वेदों से भी जो अर्थ प्रकाशित होते हैं उनमें अन्थान्तर की अपेक्षा नहीं है स्वयं प्रकाशत्व धर्म दोनों का समान है। और जैसे उत्पत्ति धर्मवाले न होने से आत्मादि द्रव्य नित्य हैं वैसा शब्द नहीं क्योंकि उत्पत्ति धर्मवाला है यहां केवल वैधर्म्य अर्थात् कार्य्य शब्द के अनित्यत्व धर्म से विरुद्ध आत्मा का नित्यत्व धर्म ही दृष्टान्त के लिये घटाया है किन्तु जो आत्मा और शब्द के अमेयत्व आदि साधर्म्य हैं वे विवक्षित नहीं। जैसा राजाजी का दृष्टान्त विषयक मत है वैसा किसी विद्वान् का नहीं कि दार्ष्टान्त के सब धर्म दृष्टान्त में घट सकते हों। नि० २ पृष्ठ ४। पं० १६। राजाजी स्वामीजी से पूछते हैं कि (स्वामीजी महाराज यह बतलावें कि पाणिनी आदि ऋषियों ने कहां ऐसा लिखा है कि मंत्रसंहिता ही वेद हैं ब्राह्मण वेद नहीं है) इसका उत्तर अब यह ब्राह्मण शब्द लौकिक है वा वैदिक इसके वैदिक होने में तो कोई प्रमाण नहीं मिलता लौकिक होने में प्रमाण देखो॥

तत्र लौकिकास्तावत्। गौरश्वः पुरुषो हस्ती शकुनिर्मृगो ब्राह्मण इति। वैदिकाः खल्वपि। शन्नो देवीरभिष्टये इषे त्वोर्जेत्वा। अग्निमीळेपुरोहितम्। अग्न आयाहि वीतय इति।

अब यहां अन्तस्थः नेत्रों से देखना चाहिये कि वैदिक शब्द में केवल ४ मंत्र संहिताओं के उदाहरण दिये हैं जो ब्राह्मण भी वेद होते तो वैदिक शब्दों में उन का उदाहरण क्यों न देते ?, अब कोई यह कहे कि लौकिक शब्दों में जिस ब्राह्मण शब्द का उदाहरण दिया है वह नपुंसकलिंग न होने से ग्रन्थवाची शब्द नहीं है किन्तु पुल्लिङ्ग होने से

मनुष्यों में जातिविशेष का नाम है तो उससे पूछना चाहिये कि नपुंसकलिङ्ग ग्रन्थवाची ब्राह्मण शब्द का वैदिक शब्दों में पाठ क्यों न किया ? । हां, प्रकरण से अर्थ की सङ्गति होती है सो यहां किसी का प्रकरण नहीं है । यहां पतञ्जलिजी महाराज के प्रमाण से यह सिद्ध होगया कि मन्त्रसंहिता ही वेद हैं ब्राह्मण नहीं । अब स्वामीजी पर जो प्रश्न था उस का तो यह उत्तर पतञ्जलि ऋषि के प्रमाण से हुआ परन्तु वही प्रश्न राजाजी के ऊपर गिरता है कि राजाजी यह बतलावें कि पाणिनि आदि महर्षियों ने ऐसा कहां लिखा है कि मन्त्र और ब्राह्मणभाग दोनों वेद हैं अस्तु तावत् । नि०२ । पृष्ठ ५ । पं० १८ । पाणिनि ने तो जहां मन्त्र और ब्राह्मण दोनों के लेने का प्रयोजन देखा स्पष्ट 'छन्दसि' कहा अर्थात् वेद में अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण दोनों में और जहां केवल मन्त्र वा ब्राह्मण का प्रयोजन देखा (मन्त्रे) वा (ब्राह्मणे) कहा और जहां मन्त्र और ब्राह्मण अर्थात् वेद के सिवाय देखा वहां 'भाषायाम्' कहा, राजाजी को यह लिखना तो सुगम हुआ परन्तु निम्नलिखित प्रमाण पाणिनिसूत्र और वेदमन्त्र आदि का अर्थ करके अपने पक्ष में घटाना सुगम क्योंकर होसकेगा । अब देखिये-छन्दो ब्राह्मणानि च तद्विषयाणि । अ० ४ । पा० २ । सू० ६६ । इस सूत्र में प्रोक्त प्रत्ययान्त छन्द और ब्राह्मण को अध्येतृ वेदितृ विषयता विधान की है अर्थात् प्रोक्तप्रत्ययान्त छन्द और ब्राह्मण का अध्येतृ वेदितृ अभिधेय में ही प्रयोग हो स्वतन्त्र न हो । अब राजाजी के इस लेखानुसार कि (जहां मन्त्र और ब्राह्मण दोनों के लेने का प्रयोजन देखा स्पष्ट "छन्दसि" कहा) इससे पाणिनि के इस सूत्र में ब्राह्मण ग्रहण व्यर्थ होता है । क्योंकि जो छन्द के कहने से मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का ही ग्रहण हो जाता तो फिर यहां ब्राह्मण का पृथक् ग्रहण क्यों किया इससे स्पष्ट ज्ञापक होता है कि छन्द से ब्राह्मण पृथक् है । नि० २ । पृष्ठ ५ । पं० २२ । से (भला जैमिनि महर्षि के पूर्वमीमांसा को तो स्वामीजी महाराज मानते हैं उस में इन सूत्रों का अर्थ क्योंकर लगावेंगे) तच्चोदकेषु मन्त्राख्या । अ० १ । पा० २ । सू० ३२ । शेषे ब्राह्मणशब्दः । अ० २ । पाद १ । सू० ३३ । इसका अर्थ बहुत स्पष्ट है वेद का मन्त्रों से अवशिष्ट जो भाग सो ब्राह्मण) यह अनुभवार्थ राजाजी ने शबर स्वामी की टीका में से सुना होगा परन्तु यहां यह भी विचार करना उनको योग्य था कि इन सूत्रों के सम्बन्ध में कहीं वेदसंज्ञा निर्वचनाधिकरण है वा नहीं किन्तु यहां तो केवल मंत्रनिर्वचनाधिकरण और ब्राह्मणनिर्वचनाधिकरण है इससे फिर मंत्र और ब्राह्मण दोनों की वेदसंज्ञा है यह अभिप्राय कहां से सिद्ध हो सकता है जो इस प्रकरण में ऐसा होता कि (अथ

वेदनिर्वचनाधिकरणम्) तो राजाजी का अभिप्राय अवश्य सिद्ध हो जाता । परमात्मा ने वेदस्थ वाक्यों से सर्व विद्याभिधान कर दिया है अब इनमें शेष अर्थात् बाक़ी पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना व्याख्या करनी करानी आदि है और थी भी जो थी सो ब्रह्मा से लेकर जैमिनिमुनिपर्यन्त महर्षि महाशय लोगों ने कर दी है जिससे ये ऐतरेय आदि ग्रन्थ ब्रह्म अर्थात् वेदों का व्याख्यान है इसीसे इनका नाम ब्राह्मण रक्खा है अर्थात् "ब्रह्मणां वेदानामिमानि व्याख्यानानि ब्राह्मणानि अर्थात् शेषभूतानि सन्तीति" । परन्तु जहां से इन सूत्रों के अर्थ में राजाजी आदि को भ्रम हुआ है सो शबर स्वामीजी की इसी सूत्र पर यह व्याख्या है (अथ किंलक्षणं ब्राह्मणम्) (मन्त्राश्च ब्राह्मणञ्च वेदः) विचार योग्य बात है कि न जाने शबर स्वामी ने इन दो सूत्रों में वेद शब्द कहां से लिया और इनकी अद्भुत कथा को देखिये कि (**प्रश्न**) ब्राह्मण का क्या लक्षण है ? (**उत्तर**) मन्त्र और ब्राह्मण वेद है विद्वान् लोग विचार लेंगे कि जैसा प्रश्न किया था वैसा ही उत्तर शबर स्वामी ने दिया है वा नहीं ? यहां विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं । किन्तु "आम्रान् पृष्ठः कोविदारानाचष्टे" । इस न्याय के तुल्य यह व्याख्या है ऐसा ही निवे० दू० २ । पृष्ठ ५ । पं० २५ । निदान जब मैंने गोतम और कणाद के तर्क और न्याय से न अपने प्रश्न का प्रामाणिक उत्तर पाया और न स्वामीजी महाराज की वाक्यरचना का उससे कुछ सम्बन्ध देखा डरा कि कहीं स्वामीजी महाराज ने किसी मेम वा साहब से कोई नया तर्क और न्याय, रूस अमरीका अथवा और किसी दूसरी विलायत का न सीख लिया हो, स्वामीजी ने जो भूमिका में गोतम न्याय का प्रमाण वेदब्राह्मण विषय में लिखा है उसको वही पुरुष समझ सकता है कि जिसने उन ग्रन्थों की शैली देखी हो । बिना पढ़े सब विद्या किसी को नहीं आ जाती । और जिन्होंने उन शास्त्रों में अभ्यास ही नहीं किया वेही ऐसा अनर्गल लिख सकते हैं कि गोतम और कणाद के तर्क न्याय से अपने प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर न पाया इत्यादि । अब राजाजी को शास्त्रों में अभ्यास करना अवश्य हुआ क्योंकि उनके प्रश्नों का उत्तर कोई नहीं दे सकता । और स्वामीजी महाराज जो किसी दूसरी विलायत का तर्क न्याय सीख भी लेते तो क्या आश्चर्य और कौनसा यह बुरा काम था और जो सीख लेते तो अपने ग्रन्थों में भी प्रमाण के लिये अवश्य लिखते या लिखवा लेते । इससे स्पष्ट विदित होता है कि राजाजी ने ही उन विलायतियों से तर्क न्याय कुछ पढ़ा नहीं तो इस का प्रसङ्ग ही क्या था । ठीक है । "यादृशी भावना यस्य बुद्धिर्भवति तादृशी"—इन के प्रश्नों का उत्तर जब ऋषि मुनियों के ग्रन्थों से भी न

हुआ तो सब ऋषियों से बढ़ के राजाजी हो गये इससे स्पष्ट सब महात्मा ऋषि लोगों की निन्दा आ जाती है (निवे० २। पृष्ठ ६। पं० ४। फरिङ्गस्तान के विद्वज्जनमण्डलीभूषण काशीराजस्थापित पाठशालाध्यक्ष डाक्टर टीबो साहब बहादुर को दिखलाया। बहुत अचरज में आये और कहने लगे कि हम तो स्वामीजी महाराज को बड़ा पण्डित जानते थे पर अब उनके मनुष्य होने में भी सन्देह होता है तब तो भ्रमोच्छेदन को भ्रमोत्पादन कहना चाहिये) बस अब तो राजाजी का पक्ष दृढ़तर सिद्ध होगया होगा क्योंकि जब उक्त महाशय साहब ने स्वामीजी के मनुष्य होने में सन्देह और भ्रमोच्छेदन का भ्रमोत्पादन नाम होने की साक्षी दी है फिर क्या चाहिये क्योंकि महाशयों की साक्षी भी गम्भीर आशययुक्त होती है क्या ऐसी साक्षी को कोई भी मनुष्य मानेगा कि स्वामीजी के मनुष्य होने में भी सन्देह है। निवे० २। पृष्ठ ७। पं० २०। डाक्टर टीबो साहब की साक्षी का परामर्श यह देखिये चित्त धर के (दयानन्दसरस्वती सिवाय एक उपनिषद् के ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रन्थों को छोड़ देते हैं और केवल संहिताओं को प्रमाण मानते हैं) इस का उत्तर तो भ्रमोच्छेदन के पृष्ठ ११। पं० २० में यह स्पष्ट लिखा है (परन्तु जो २ वेदाऽनुकूल ब्राह्मणग्रन्थ हैं उनको मैं मानता और विरुद्धार्थों को नहीं मानता हूं) जो उक्त साहब ध्यान देकर देखते तो सिवाय एक उपनिषद् के इत्यादि विरुद्ध साक्षी क्यों देते। निवे० २। पृष्ठ ७। इसी उत्तर और इस विषय से आगे जो २ उक्त साहब ने लिखा है उस २ का उत्तर इसी उत्तर के आगे भ्रमोच्छेदन में लिखा है। निवे० २। पृष्ठ ८। पं० १८ (निःसन्देह दयानन्द सरस्वतीजी को अधिकार नहीं कि कात्यायन के उस वचन को प्रक्षिप्त बतावें जिसके अनुसार मन्त्र और ब्राह्मण का नाम वेद सिद्ध होता है ऐसे तो जो जिस किसी वचन को चाहे अपने अविवेक कल्पित मत से विरुद्ध पाकर प्रक्षिप्त कह दें) मुझ को अपनी अल्पबुद्धि से आज तक यह निश्चय था कि सत्याऽसत्य विचार करने का अधिकार सब विद्वानों को है जो यह राजाज्ञावत् डाक्टर टीबो साहब की सम्मति सत्य हो तो ऐसा हो जाय किन्तु जो केवल एक डाक्टर टीबो साहब ने ही ठेका लिया हो कि अन्य सब को अधिकार है केवल स्वामीजी को नहीं कि कौन प्रक्षिप्त और कौन नहीं ऐसा विचार करें जो ऐसा तो डाक्टर टीबो साहब को सम्मति देने और खण्डन मंडन का अधिकार किसने दिया है? हम भी पूछ सकते हैं अहो आश्चर्य्य इस सृष्टि में कैसी २ अद्भुत लीला देखने में आती है। निवे० २। पृ० ६। पं० ५। (सो मेरा तो अभिप्राय इतना ही है कि यदि ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार जमदग्नि आदि का अर्थ यों ही माना जावे तो संहिता के समान ब्राह्मणों

को भी वेद भाग अथवा माननीय मानने में उन्हीं ब्राह्मणग्रन्थों की युक्तियां क्यों न मानी जावें) जो इस बात का प्रमाण किया जावे तो यास्कमुनिकृत निघण्टु, निरुक्त, पाणिनिमुनिकृत अष्टाध्यायी, पतञ्जलि महामुनिकृत महाभाष्य और पिङ्गलाचार्य्यकृत पिङ्गलसूत्र वेदों के भाष्य वा टीका आदि को भी वेद क्यो न माना जावे क्योंकि जैसे शतपथादि ग्रन्थों से वेदस्थ जमदग्नि आदि शब्दों के अर्थ चक्षु आदि माने जाते हैं वैसे ही निघण्टु और निरुक्त आदि से भी वैदिक शब्दों के संज्ञा और निर्वचन व्याकरण से शब्द अर्थ और सम्बन्ध और पिङ्गलसूत्रों से गायत्र्यादि छन्द, षड्जादि स्वर आदि की व्याख्या वेदों से अविरुद्ध मानी जाती है तो इनकी वेदसंज्ञा कौन कर सकेगा। निवे० २ । पृष्ठ ६ । पं० १० । (सो यहां भी मेरा तो अभिप्राय इतना ही है कि वेद के नाम से मन्त्रभाग अर्थात् संहिता और ब्राह्मणों को मान कर जहां वेदों को अपरा कहा जाय वहां मन्त्र और ब्राह्मणों का कर्मकाण्ड और जहां वेदों को परा कहा जाय वहां मन्त्र और ब्राह्मणों का ज्ञानकाण्ड मानना चाहिये) निवे० १ । पृष्ठ ११ । पं० १० । (इसका अर्थ सीधा २ यह मान लेवें कि आपके चारों वेद और उनके छओं अङ्ग "अपरा" हैं जो "परा" उस से अक्षर में अधिगमन होता है अपना फिरावट का अर्थ वा अर्थाभास छोड़ दें) निवे० १ । पृष्ठ १२ । पं० २० । (नोट- कि चारों वेदसंहिता और उनके छओं अङ्ग अपरा हैं परा उनके सिवाय अर्थात् उपनिषद हैं) मुझ को बड़ा आश्चर्य्य हुआ कि यहां क्यों राजाजी ने अपने पूर्व लेख से अपर लेख को विरुद्ध लिखा देखो पहिले निवेदन में चारों वेद और छओं अङ्गों को अपरा और उपनिषदों को परा विद्या मानी थी और दूसरे निवेदन में चारों वेदों के कर्मकाण्ड को अपरा और उन के ज्ञानकाण्ड को परा विद्या मानी और दोनों निवेदनों का अभिप्राय यही है कि मन्त्रभागसंहिता और ब्राह्मणभाग को वेदसंज्ञा मानें इसलिये इतना परिश्रम उठाया और नोट में चारों वेद संहिता अर्थात् मन्त्रसंहिताओं ही को वेद मान कर ब्राह्मणों को वेदसंज्ञा में लिखना भूल गये दृष्टि कीजिये (तत्रापरा ऋग्वेदो, यजुर्वेदः, सामवेदो, अथर्ववेदः) राजाजी के इस लेख ने उन्हीं के अभिप्राय का निराकरण कर दिया इसको न लिखते तो अच्छा था क्योंकि इस लेख में ऋग्यजुः साम और अथर्व चार शब्द वाच्य मन्त्रभागसंहिताओं ही के साथ चार वार वेद शब्द का पाठ है । ऐतरेय शतपथ छान्दोग्य ताण्ड्य आदि और गोपथ ब्राह्मण ग्रन्थों की उस वचन में न परा न अपरा में गणना और न ऐतरेय आदि शब्दों के साथ वेद नाम का पाठ है इसलिये यह पूर्वापर विरुद्ध लेख है । निवे० २ । पृष्ठ ६ । पं० १४ ।

(ऐसा ही आज तक वैदिक हिन्दू परम्परा से मानते चले आये है) यहां भी मैं राजाजी से यह पूछता हूं कि परम्परा और आज तक इस वाक्यावली का अभिप्राय सृष्ट्युत्पत्ति से लेकर आज तक का समय लिया जाय वा जैसा कि चार पांच पीढियो मे परम्परा हो जाती है वैसी ग्रहण की जाय जो प्रथम पक्ष है तो वैदिक के साथ आर्य्य शब्द लिखना उचित था अर्थात् वैदिक आर्य्य और जो चार पांच पीढी की परम्परा अभिप्रेत है तो लोकाचार से भी वैदिक हिन्दू लिखना ठीक नहीं क्योकि भारतवर्षवासी मनुष्यो की हिन्दूसंज्ञा सिवाय यवनग्रन्थ और यवनाचार्य्यों की पाठशाला मे पठनपाठन-संसर्ग के विना राजाजी को कहीं न मिलेगी और ऋग्वेद से लेकर पूर्वमीमांसापर्य्यन्त संस्कृतग्रन्थो मे तो एतद्देश का नाम आर्य्यावर्त्त और इस मे रहनेवाले मनुष्यो का नाम आर्य्य वा ब्राह्मण आदि संज्ञा ही मिलेगी परन्तु यह राजाजी को स्वात्मानुभव वा इस देशियो पर द्वेष अथवा आर्य्यावर्त्त देश से भिन्न देशस्थ विलायतियो से शिक्षा पाकर बोध हुआ होगा। यह साधारण बात नहीं किन्तु जो यह वैदिक शब्दों के साथ हिन्दू शब्द का परम्परा से आज तक पढ़ देना। सो राजाजी की विदेशियों की विद्या और शिक्षा का अनुपम फल है। नि० २। पृष्ठ १०। पं० ६। (भला आपके) (शिवप्रसाद के) एक सहज से प्रश्न का तो उत्तर श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वतीजी से बना ही नहीं उत्तर के बदले दुर्वचनों की वृष्टि की, यदि काशीजी के पण्डित उनसे शास्त्रार्थ करने को उद्यत भी हो तो उत्तर के स्थान में उन्हें वैसे ही दुर्वचन पुष्पाञ्जलि का लाभ होगा इससे अतिरिक्त उसमे सत्कुछ भी सार नहीं निकलेगा (इस पर मै अपनी बुद्धि के अनुसार इतना ही लिखता हूं कि जो श्रीयुत बालशास्त्रीजी 'श्रीमत् पंडितवरधुरन्धर अज्ञान-तिमिरनाशनैकभास्करविशेषणयुक्त ऐसा कहते है और ऐसा निश्चय हो तो स्वामीजी से उनके बड़े २ गम्भीराशय प्रश्नो के उत्तर कभी न बन सकेंगे फिर इस से मेरी और अन्य लाखों किंवा करोड़ो मनुष्यो की यह इच्छा है कि जो कोई विद्वान् स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी के पक्ष को वेदादि शास्त्रद्वारा निरस्त कर दे तो उनको क्या ही लाभ न हो पुनः उक्त महाशय इस मे क्यों विलम्ब कर रहे है और दुर्वचन पुष्पाञ्जलि विषय मे इतना ही मैं लिखता हूं कि काशीस्थ लोगों ने दूषणमालिका, दयानन्दपराभूति, चर्म-कार भी स्वामीजी से उत्तम गाली सहस्र नाम आदि पुस्तक और दण्डनीय, आदि विज्ञा-पन समाचारों मे छपवाया तथा ताली शब्द आदि और जैसा असभ्य अनर्थ लेख स्वामीजी पर किया है और स्वामीजी ने संवत् १९२६ के शास्त्रार्थ में किसको गालीप्रदान

वा दुर्वचन पुष्पाञ्जलि की थी और जैसे पक्षपात क्रोध रहित होने के लिये स्वामीजी को लिखते हैं तो राजाजी ने पक्षपात और क्रोधयुक्त स्वामीजी को कब देखा था! भला क्या पूर्वोक्त तो सुवचन पुष्पाञ्जलि है और स्वामीजी का लेख दुर्वचन पुष्पाञ्जलि कहा जा सकता है डाक्टर टीबोसाहब बहादुर स्वामी दयानन्दसरस्वतीजी के मनुष्य होने में भी सन्देह लिखते है क्या डाक्टर टीबोसाहब को अपने सहीस आदि नौकरों के तो मनुष्य होने में कुछ भी संदेह नहीं किन्तु केवल स्वामीजी के मनुष्य होने में संदेह करते है क्या यह बात अद्भुत गंभीराशय और असङ्गत नहीं है ?, अहो क्या ऐसे २ लेख को भी बुद्धिमान् लोग अच्छा समझेंगे, धन्य है! श्रीयुत शिवप्रसादजी वादी और धन्य है! उनके साक्षी अर्थात् श्रीमज्जगत्पूज्यस्वामी विशुद्धानन्दसरस्वतीजी श्रीमत् पण्डितवरधुरन्धर अज्ञानतिमिरनाशनैकभास्कर बालशास्त्रीजी महाराज आर्यजन और विद्वज्जनमण्डलीभूषण काशीराजस्थापितपाठशालाध्यक्ष डाक्टर टीबोसाहब बहादुर योरूपियन्, कि जिन्होने परस्पर मिलकर अपना अभीष्ट मत प्रकाशित किया है क्या भला ऐसे २ महाशयो के सामने मेरा लेख 'हास्यास्पद न होगा और क्या ऐसे २ महात्माओं की साक्षी होने पर राजाजी के विजय होने में किसी को सन्देह भी रहा होगा वाह! वाह!! वाह!!! जो कोई परपक्षनिषेध और स्वपक्ष सिद्ध करे तो ऐसीही बुद्धिमत्ता से करे क्या सहायक अनुमतिदायक भी ऐसे होने योग्य हैं जहां अर्थी ही साक्षी और न्यायाधीश हों वहां जीत क्यों न होवे क्यों न हों क्या यही सत्पुरुषों का काम है कि जहांतक बने दूसरे की निन्दा अपनी स्तुति करनी अपना सुकर्म समझना हां मैं भी तो राजा शिवप्रसादजी और स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वतीजी वा बालशास्त्रीजी और डाक्टर टीबोसाहब बहादुर साक्षी आदि महाशयों के सामने स्वामीजी की मनमानी निन्दा और अप्रतिष्ठा करने में तत्पर होता जो उनके प्रशंसनीय गुणकर्मस्वभाव न जानता होता उनकी निन्दा और अपमान करने में कमती कभी करता परन्तु बाल्मीकि मुनि ने कहा है कि (सहवासी विजानीयाच्चरित्रं सहवासिनाम्) विना किसी के सङ्ग किये उसके गुण दोष विदित नहीं हो सकते संवत् १९२८ से १९३७ के वर्ष पर्यन्त मेरा और स्वामीजी का समागम रहा है जितने वर्ष वा महीने स्वामीजी का सत्सङ्ग मैंने किया है और यथाबुद्धि थोड़े से वेद भी देखे हैं उतने दिन और उतने मुहूर्त्त भी उन का समागम राजाजी आदिने न किया होगा नहीं तो इतना अटाटूट विरोध कभी न करते। देखिये कई एक बड़े २ सेठ साहूकार रईस बुद्धिमान् पण्डित सज्जन लोग राजे महाराजे स्वामीजी को अत्यन्त मानते, श्रद्धा करते और उपदेश का भी

स्वीकार करते हैं और बहुतेरे विरुद्ध भी हैं तथापि कभी किसी का पक्षपात किसी से लोभ किसी का भय किसी की खुशामद किसी से छल वा किसी से धन हरने का उपाय वा किसी से स्वप्रतिष्ठा की चेष्टा आदि अशिष्ट पुरुषों के कर्म करते इन को मैंने कभी नहीं देखा और क्या जैसी सब की सत्य बात माननी और असत्य न माननी स्वामीजी की रीति है वैसी ही राजाजी आदि को मानने योग्य नहीं है ! परन्तु इतने पर भी मैं बड़े आश्चर्य्य में हूं कि राजाजी आदि महाशय निष्कारण ईर्षा और परोत्कर्षासहनरूप यानारूढ़ होकर स्वामीजी की बुराई करने में बढ़ते ही चले जाते हैं न जाने कब और कहां तक बढ़ेंगे क्या इस का फल आर्य्यावर्त्तादि देशों की अनुन्नति का कारण न होगा ? क्यों न यह घर की फूटरूपी रसास्वादन का प्रवाह दुर्योधनरूप हलाहल सागर से बहता चला आता हुआ आर्य्यावर्त्तस्थ मनुष्यों के अभाग्योदयकारक प्रलय को प्राप्त अब तक न हुआ क्यों इसको परमेश्वर अपने कृपाकटाक्ष से अब भी नहीं रोक देता कि जिससे हम सब सर्वतन्त्र सिद्धान्तरूप प्रेमसागरामृतोदधि में स्नान कर त्रिविध ताप से छूटकर परमानन्द को प्राप्त हों जैसे द्वीपद्वीपान्तर के वासी मुसलमान, जैन, ईसाई आदि मनुष्य अपने स्वदेशी और स्वमतस्थों को आनन्दित कर रहे हैं क्या ऐसे हम लोगों को न होना चाहिये प्रत्युत सब देशस्थ समग्र मनुष्यादि प्राणिमात्र के लिये परस्पर उपकार विद्या शुभाचरण और पुरुषार्थ कर अपने पूर्वज कि जिन महाशय आर्यों के हम सन्तान हैं उनका दृष्टान्त अर्थात् उपमेय न हों और जैसी उनकी कीर्ति और प्रतापरूप मार्त्तण्ड भूगोल में प्रकाशित होरहा था उन का अनुकरण क्यों न करें और इस में आश्चर्य्य कोई क्यों मानें कि राजाजी और उन के अनुयायी साक्षी स्वामीजी को अविद्वान् पशु अन्धे आदि यथेष्ट शब्दों से निन्दा करते हैं मैं निश्चित कहता हूं कि स्वामीजी की निन्दा अप्रतिष्ठा और विरोधता किस ने नहीं की काशी में संवत् १९२६ वें वर्ष में उन पर हल्ला किया संखिया मिलाकर पानबीड़ा दिया बुरी २ निन्दा के पुस्तक और विज्ञापन दिये कई ठिकाने मारने को आये ऊपर पत्थर और धूल फेंकी जिले बुलन्दशहर करणवास के समीप जहां स्वामीजी रहते थे वहीं किसीने रात के१बजे के समय १० आदमी तलवार और लट्ठ लेकर मारने को भेजे कई नास्तिक कहते कई कश्चीन बतलाते कई क्रोधी और कई पशुवत् नीच विशेषण देते कई उनका मुख देखने में पाप बतलाते और पास जाने को अच्छा नहीं कहते कोई कलि का अवतार कोई कल मरते आज ही मरजाय तो अच्छा कई मजिस्ट्रटों के कान भर व्याख्यान बन्द करा-देने में प्रयत्न कर चुके और कोई इनके बनाये पुस्तक भी हाथ में न लेना न देखना कई

अपने बाग बगीचों में उन का रहना भी स्वीकार नहीं करते कई वेश्या का मुख देखने, सङ्ग करने और पुंसि मैथुनाचरण में भी अपना धन्य जन्म मानते और औरों को उत्साहित करते हैं और स्वामीजी के दर्शन और सङ्ग उस से भी बुरा बतलाते है कई स्वामीजी और स्वामीजी के उपदेश माननेवालों को महानरक में गिरना चितलाते है । आप गौतम और कणादादि महाशयो से अपने को बुद्धिसागर ठहराते और स्वामीजी को निर्बुद्धि सहज प्रश्नो के उत्तर के अदाता कहते और कई चमार चाण्डाल आदि में विद्वत्ता और मनुष्य होने की शङ्का नहीं करते और स्वामीजी में विद्वत्ता के होने और मनुष्यपन में भी शङ्का बतलाते हैं कोई रेल का भाड़ा भी नहीं लगता ऐसा कहते है अब कहांतक इस लम्बी गाथा को कहूं । मै ऐसी बातें सुनता और लिखता हुआ थकित हो गया क्या ये पूर्वोक्त बातें आर्य्यावर्त्त के दौर्भाग्य के कारण नहीं हो रही हैं तथापि धन्य है स्वामीजी को इतने हुए परभी सनातन वेदोक्त आर्य्योन्नति के यत्नों से विरक्त न होकर परोपकार से अपना जन्म सफल कर रहे है भला जो धर्म्म और परमात्मा की कृपा न होती और परमत द्वेषी स्वमतानुरागी क्षुद्राशय लोगों का राज्य होता तो स्वामीजी का आज तक शरीर बचना भी दुस्तर न हो जाता क्या जो आर्य्य लोग भी मुसलमान आदि के तुल्य होते तो अब तक स्वामीजी का मुख और हस्त वेदभाष्यादि पुस्तक लिखने के लिये आज तक कुशल रह सकते ? और जो स्वामीजी में पक्षपात राहित्य सत्यता विद्वत्ता शान्ति निन्दा स्तुति में हर्ष शोक रहितता न होती और विमलविद्याप्रगल्भता धार्मिकता आप्तत्वादि शुभ गुण न होते तो ऐसे २ सनातन वेदोक्त सत्य धर्मोपदेशादि प्रशंसनीय आर्य्योन्नति के दृढ़ कारण प्रकाशित और सुस्थिर कभी न कर सकते क्योकि देखो आर्य्यावर्त्त में प्रशंसनीय महाशय विद्वानों के विद्यमान रहने भी आर्य्यावर्त्तीय मनुष्यो की वेदोक्त धर्माढ्यता प्राचीन अभ्युदयोदय प्रच्छन्न क्यों रह जाता क्या प्रत्यक्ष में भी भ्रम है कि देखिये जो हम आर्यों को बिना आसमानी किताब वाले बुत्परस्त नालायक इन के मत का कुछ भी ठिकाना नहीं आदि आक्षेपों से जैन मुसलमान और इसाई लाखह क्रोड़ह बह का के अपने मत में मिलाते और कहते थे कि आओ हमसे वादविवाद करो हमारा मजहब सच्चा और तुम्हारा झूठा है वे ही अब स्वामीजी के सामने वेदादि शास्त्रों और तदुक्त आर्य्यधर्म का खण्डन तो दूर रहा परन्तु वाद करना भी असह्य समझते और कहते है कि आप हम पर प्रश्न मत कीजिये डरते है स्वामीजी के सन्मुख तो ऐसा है परन्तु जिन्होंने स्वामीजी के ग्रन्थ देखे और उनका समागम यथावत् किया है उनके भी सामने

वे विजयवन्त नहीं हो सकते इत्यादि जो राजाजी आदि स्वामीजी के स्तुत्य गुण कर्म स्वभाव जानते तो उनके साथ ऐसा विरुद्ध वर्त्तमान कभी न करते। सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी सर्वव्यापक सर्वनियन्ता जगदीश्वर सब आर्य्यों के आत्माओं में परस्पर प्रीति गुण स्वीकार दोषपरिहार वेदविद्योन्नतिरूप कल्पवृक्ष और चिन्तामणि को सुस्थिर करे जिससे सब आर्य्य भाई उसको परस्पर प्रेम और उपकाररूप सुन्दर जल से सींचकर उसके आश्रय से प्राचीन आर्य्य पदवी को पाकर आनन्द में सदा रहें और सब को रक्खें ॥

राजाजी का बनाया इतिहास मैंने देखा तो अद्भुत बातें दिखाती हैं इनसे यह भी प्रसिद्ध है कि जो स्वश्लाघा और अभिमान करेगा तो इतना ही करेगा निम्न लेख से यह बात सब को विदित हो जायगी क्योंकि इङ्गित चेष्टित से मनुष्य का अभिप्राय गुप्त नहीं रह सकता राजाजी का कुछ अभी ऐसा वर्त्तमान है सो नहीं किन्तु (स्वभावो नान्यथा भवेत्) जैसा स्वभाव मनुष्य का होता है वह छूटना दुस्तर है जो उन्होंने इतिहासतिमिरनाशक ग्रन्थ बनाया है उसको कोई विद्वान् पक्षपातरहित सज्जन पुरुष ध्यान देकर देखे तो राजाजी की मानसपरीक्षा और सौजन्य विदित अवश्य हो जावे कि इनका क्या अभीष्ट है उसमें अप्रमाण वेदादिशास्त्राभिप्रायशून्य बहुत बातें है और कुछ अच्छी भी हैं जो अच्छी हैं उनका स्वीकार और जो अन्यथा हैं उनके संक्षेप से दोष भी प्रकाशित करता हूं जैसे मुझ को विदित होता है इतिहासतिमिरनाशक पृष्ठ १। पंक्ति ११ (बाप, दादा और पुरखा तो क्या हम इस ग्रन्थ में उस समय से लेकर जिससे आगे किसी को कुछ मालूम नहीं आज पर्य्यन्त अपने देश की अवस्था लिखने का मंसूबा रखते हैं) राजाजी थोड़ासा भी सोचते तो इतना अपना गौरव अपने हाथ से लिखने में अवश्य कम्प जाकर रुक के यथार्थ बात को समझ सकते। क्या अपने पुरखों से स्वयं उत्तम और सब आर्य्यावर्त्त वासियों को इतिहासज्ञान विषय में निकृष्ट अज्ञानी कर स्वश्लाघी स्वयं नहीं बने हैं क्या कोई भी पूर्ण विद्वान् स्वमुख से अपनी कीर्त्ति को कह सकता है। यह सच है कि जितना २ विद्याविनय मनुष्य को अधिक होता है उतना २ वह सुशील निरभिमानी महाशय होता और जितना २ वह कम होता है उतनी २ उसको कुशीलता अभिमान और स्वल्पाशयता होती है। इति० पृष्ठ १—१६ (पुराना हाल जैसा इस देश का बेठौर ठिकाने देखने में आता है विरले किसी दूसरे देश का मिलेगा) वाह वाह वाह !!! न जाने किस देश की पाठशाला में इतिहासों को पढ़ के राजाजी को अपूर्वविज्ञान हुआ क्या यूरोप अमेरिका एफरीका आदि देशों के पूर्व इतिहासों से भी आर्य्यावर्त्त देश का प्राचीन इति-

हास बुरा है यह भी इन का लेख आर्य्य लोगों को ध्यान में रखना चाहिये । इतिहा० पृष्ठ ३ । पङ्क्ति २ । (आगे संस्कृत श्लोक बनाते थे अब भाषा में छन्द और कवित्त बनाते हैं क्योंकि गद्य का कण्ठस्थ रखना सहज है निदान ये भाट इसी में बड़ाई समझते है) क्या ही शोक की बात है कि मनु वाल्मीकि व्यास प्रभृति ऋषि महर्षि महात्मा महाशय ब्राह्मण लोगों को तो राजाजी भाट ठहराते हैं और आप महात्माओं के निन्दक और उपहासकर्त्ता होकर नकली की पदवी को धारण करते हैं, विदित होता है कि आर्य्यावर्त्तीय धार्मिक आप्तपुरुषों की निन्दा और विदेशियों की अत्युक्ति सदृश स्तुति ही से राजाजी प्रसन्न बनते हैं । इतिहा० पृष्ठ ४ । पं ३० । (हाय हमारे देश में इतना भी कोई समझनेवाला नहीं) सिवाय आप के ऐसी २ गूढ़ बातों के मर्म को कौन समझ सकता है तब ही तो आप सब से बड़ा मंसूबा बांध कर इतिहास लिखने को प्रवृत्त हुए । इतिहा० पृ० १० (बहुतेरे हिंदू यह भी कहेंगे कि जो बात पोथी में लिखी गई और परम्परा से सब हिंदू मानते चले आये भला अब वह क्योंकर झूठ ठहर सकती है) भला यहां तो हिन्दुओं की परम्परा का तिरस्कार राजाजी कर चुके और दोनों निवेदनों में ब्राह्मण पुस्तकों को वेद मानने के लिये स्वीकार किया है ठीक है मतलबसिन्धु ऐसी ही चतुराई से पूरा करना होता है । इतिहा० पृष्ठ १२ । प० १ से लेकर पृष्ठ १४ पं० ११ तक बौद्ध जैन हिंदुओं के मतविषयक बातें लिखी हैं इससे विदित होता है कि राजाजी का मत बौद्ध जैनी ही है । इसीलिये अपने मत की प्रशंसा वैदिकमत की निन्दा मनमानी की है । यह इन को अच्छा समय मिला कि कोई जाने नहीं और वैदिक मत की जड़ उखाड़ने पर सदा इन की चेष्टा है पुनः स्वामीजी जो सनातन रीति से वेदों का निर्दोष सत्य अर्थ ठीक २ प्रकाशित कर रहे हैं इन को अच्छा कब लग सकता है इसीलिये निवेदनों में भी अपनी सदा की चाल पर राजाजी चलते हैं इस में क्या आश्चर्य है । इतिहा० पृष्ठ १५ । पं० १ । (हिन्दुओं की प्राचीन अवस्था०) यह बड़ा अनर्थ राजाजी का है कि आर्यों को हिन्दू और पारस देश से आये हैं । पहिली बात तो इन की निर्मूल है क्योंकि वेदों से ले के महाभारत तक किसी ग्रन्थ में आर्यों को हिन्दू नहीं लिखा कौन जाने राजाजी के पुरुखे पारस देश से ही इस देश में आये हों और उन का परम्परा से स्वदेश पारस का संस्कार अब तक चला आया हो क्या यह बात असम्भव है कि इस आर्य्यावर्त्त ही से कोई मनुष्य पारस देश में जा रहे हों क्योंकि पारस देश में उत्पन्न हुई मद्री पाण्डुराजा से विवाही थी उसी समय वा आगे पीछे वहां से यहां और यहां से वहां आ जा रहने का सम्भव होसकता है और क्या जो पारस

देश से आकर ही बस होते तो पारसी लोगो वा ईरान वालों के प्राचीन इतिहासों में स्पष्ट न लिखते ? । इतिहा० पृ० १५। पं० ५ (असुर को अहुर) नोट । पं० १३। यहां भी ऋग्वेद के आरम्भ में असुर का अर्थ सुर लिया है और उसे सूरज का नाम माना है। (असुरः प्राणदाता । असुरः सर्वेषां प्राणदः । असुर राक्षस के लिये तभी से ठहराया गया जब से सुर, देव, देवता के लिये ठहरा इत्यादि) धन्य है (मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी) इस में तो कुछ दोष नहीं कि असुर को वे पारसी लोग अहुर कहै परन्तु जो बातें ऋग्वेद के नाम से राजाजी ने लिखी है सब निर्मूल हैं क्योंकि ऋग्वेद के आरम्भ में तो (असुरः प्राणदाता) (असुरः सर्वेषां प्राणदः) ये नहीं है किन्तु ऐसा पाठ ऋग्वेद भर में कहीं नहीं है । क्या आश्चर्य है कि ईरानवाले जिद से देव को राक्षस कहते हों । इतिहा० पृ० १५ । पं० ७ । (हिंदू अपने तई दूसरी जाति के लोगों से जुदा रहने के निमित्त आर्य पुकारते थे और इन्हीं के बसने से यह देश हिमालय से विन्ध्य तक आर्य्यावर्त्त कहलाया पारस देश वाले भी आर्य्य थे बरन इसी कारण उस को अब भी ईरान कहते हैं) क्या अद्भुत लीला है ईरानवाले तो अब तक ईरानी, पारस वाले पारसी ही बने रहे आर्य्य नाम वाले क्यों न हुए । कैसा झूठ लिखा है कि अपने जुदा रहने के लिये आर्य्य पुकारते थे । जो ऋग्वेद की कथा भी राजाजी ने सुनी होती तो (विजानीह्यार्य्यान्ये च दस्यवः) (उत शूद्रे उतार्य्ये) इन का अर्थ यही है (आर्य्य) श्रेष्ठ और (दस्यु) दुष्ट (आर्य्य) द्विज और (शूद्र) अनार्य को कहते हैं इस को जानते तो ऐसा अनर्थ क्यों लिख मारते जो ईरान से आर्य्य हो जाता है तो (आरा) और (अरि) आदि शब्दों से आर्य्य सिद्ध करने में किसी को राजाजी न अटका सकेंगे। ऐसे बहुत पुरुष अपनी प्रशंसा के लिये विदेशियों की झूठी खुशामद किया ही करते हैं। इतिहा० १५ । पं० २८ (ईरानकी पुरानी पारसी भाषा में एक प्रकार की संस्कृत थी अर्थात् उसी जड़ से निकली थी जिस से संस्कृत निकली है) भला पारसी पढ़े विना ऐसी २ गुप्त जड़ों की खोज राजाजी न होते तो कौन करता जो थोड़ासा भी विचार करते तो श्रेष्ठ गुणों से आर्य्य और एक किसी मनुष्य का नाम है आर्य्य उससे और इस देशवालों से क्या सम्बन्ध हो सकता है जिनमे दृष्टान्त संस्कृत पुरानी पारसी के उदाहरण दिये हैं ये सब संस्कृत से पुरानी पारसी बनी है यह ठीक है क्योंकि पारस देश का नाम निशान भी न था तब से आर्य्य और आर्य्यावर्त्त देश है। जब पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ किया है तब यवन देश के सब राजा आये थे उसी ईरान का राजा शल्य भी महाभारतयुद्ध में आया ही था इसलिये राजाजी का ऐसा अनुभव

केवल पारसी भाषा पढ़ने से हुआ है संस्कृत से नहीं। इतिहास पृष्ठ १६। पं० २। से (ये आर्य्य उस समय सूर्य्य के उपासक थे वेद में सूर्य्य की बड़ी महिमा गायी है हिन्दुओं का मूलमन्त्र गायत्री इसी सूर्य्य की वन्दना है विष्णु इसी सूर्य्य का नाम है) राजाजी का स्वभाव सब से विलक्षण है, कोई कहता हो दिन तो वे रात कहें यद्यपि वेदों में सूर्य्य शब्द से परमेश्वर आदि कई अर्थ प्रकरण से भिन्न २ कहे हैं परन्तु उपासना में सूर्य्य शब्द से जिसको गायत्री मन्त्र कहता और जो व्यापकता से विष्णु है वहां परमेश्वर ही लिया है अन्यत्र भौतिक। इतिहा० पृष्ठ १८। पं० १। (आकाश को इन्द्र ठगाया) वेदों में इन्द्र शब्द से आकाश का ग्रहण कहीं नहीं किया है। हां राजाजी ने अपनी कल्पना से समझा होगा। इतिहा० पृष्ठ १८। पं० ३ (गाय, बैल, घोड़ा, भेड़ और बकरी इत्यादि का बलि देते थे और उन का मांस भून भून और उबाल २ कर खाते थे। नोट—ऋग्वेद में एक अश्वमेध का हाल यों लिखा है घोड़े के आगे रङ्ग विरङ्ग की बकरियां रख कर उस से अग्नि की परिक्रमा दिलाई और फिर खम्भे से बांध कर और फरसे से काट कर उस का गोस्त सींक पर भूना और उबाला और गोले बना कर खा गये) हाय! ऐसे अनर्थ लिखके वेद और आर्य्यों की निन्दा कर राजाजी ने संतुष्टि क्यों की क्योंकि गाय आदि पशुओं का मारना वेदों में कहीं नहीं लिखा न शराब का पीना और अश्वमेध का ऐसा हाल कहीं भी नहीं लिखा, राजाजी ने वाममार्गियों के सङ्ग से ऐसी बात कि जिससे वेदों की निन्दा हांसी हो लिखी होगी। इतिहा० पृष्ठ १६। पं० १२। (वर्णभेद शुरू में दो ही रहा होगा अर्थात् गोरा और काला वर्ण का अर्थ रंग है) वाह क्या चतुराई की लटा-झलिक रही है क्या गोरे और काले के बीच में कोई भी रंग नहीं होता और (वर्णा वाहुः पूर्वसूत्रे) वर्ण नाम अक्षर वर्ण नाम स्वीकार अर्थ क्या नहीं होते (स्वार्थी दोषन्न पश्यति) हां यह हो तो हो कि विना गोरों की प्रशंसा के स्वार्थसिद्ध क्योंकर होता) इतिहा० पृष्ठ २० से ले के अङ्गरेज़ के पैर पकरने अर्थात् ग्रन्थ की समाप्तिपर्य्यन्त राजाजी ऐसी चाल चलन से चले हैं कि जिससे इस देश की बहुत बुराई और कुछ अन्य देशों की भी वेदादिशास्त्रों की निन्दा और जैनमत की इंगित से प्रशंसा और अङ्गरेज़ों की प्रशंसा में जानों सब भाटों के प्रपितामह ही बन रहे हैं। क्या ही शोक की बात है कि इतिहासतिमिरनाशक के तीसरे खण्ड में कितने बड़े वेद आदि शास्त्रों और आर्य्य तथा आर्य्यावर्त्त देश की निन्दा लिख कर छपवाई है तो भी राजाजी के चरित्र पर किसी आर्य्य विद्वान् ने विचार-कर प्रत्युत्तर नहीं किया मैंने अल्पसामर्थ्य से (स्थालीपुलाकन्याय) के समान थोड़ासा

नमूना राजाजी का दिखलाया है। इतने ही से सब बुद्धिमान् राजाजी के और मेरे गुण दोषों का विचार यथावत् कर ही लेंगे। जिन्हों ने वेद और आर्य्यावर्त्त की गर्हा करनी ही अपनी बड़ाई समझ ली है तो स्वामीजी की निन्दा करें इस में क्या आश्चर्य है सर्वशक्तिमान् परमात्मा परमदयालु सब पर कृपा रक्खे कि कोई किसी की निन्दा न करे सत्य को माने और झूठ को छोड़ दे मेरा यहां यह अभिप्राय नहीं है कि किसी की व्यर्थ निन्दा करूं वा मिथ्या स्तुति। हां इतना कहता हूं कि जितनी जिस की समझ है उतना ही कह और लिख सकता है मेरी धार्मिक विद्वानों से प्रार्थना है कि जो कुछ मुझ से अन्यथा लेख हुआ हो तो क्षमा करें और अपनी प्रशंसनीय विद्यायुक्त प्रज्ञा से उस को शुद्ध कर लेवें इस पर सत्य २ परामर्श का प्रकाश कर आर्य्यों को सुभूषित करें॥

ऋषिकालाङ्कभूवर्षे तपस्यस्याऽसिते दले।
दिक्तिथौ वाक्पतौ ग्रन्थो भ्रमच्छेत्तुमकार्य्यलम्॥

इति भीमसेनशर्म्मकृतोऽनुभ्रमो-
च्छेदनोग्रन्थः पूर्णः॥

विज्ञापन ॥

पहिले कमीशन में पुस्तकें मिलती थीं अब नक़द रुपया मिलेगा ।

डाकमहसूल सबका मूल्य से अलग देना होगा ॥

विक्रयार्थ पुस्तकें	मूल्य
ऋग्वेदभाष्य (९ भाग)	२०)
यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण	१०)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	१)
,, केवल संस्कृत	।।।)
वेदाङ्गप्रकाश १४ भाग	४।=)।।।
अष्टाध्यायी मूल	≈)।।
पंचमहायज्ञविधि	-)।।
,, बढ़िया	=)
निरुक्त	।।=)
शतपथ (१ काण्ड)	।)
संस्कृतवाक्यप्रबोध	=)
व्यवहारभानुः	=)
भ्रमोच्छेदन	)।।।
अनुभ्रमोच्छेदन	)।।।
सत्यधर्मविचार (मेलाचांदापुर) नागरी	-)
,, ,, (उर्दू)	-)
आर्योद्देश्यरत्नमाला (नागरी) ।।।) सौ	)।
,, (मरहठी)	-)
,, (अंग्रेज़ी)	)।।।
गोकरुणानिधि	-)
स्वामीनारायणमतखण्डन	-)।।
हवनमंत्र १) रुपया सौ	)।
आर्याभिविनय बड़े अक्षरों का	।=)
आर्याभिविनय गुटका	≈)

विक्रयार्थ पुस्तकें	मूल्य
सत्यार्थप्रकाश नागरी	१)
सत्यार्थप्रकाश (बंगला)	१)
संस्कारविधि	।।)
विवाहपद्धति	।)
शास्त्रार्थ फ़ीरोज़ाबाद	-)।।।
आ० स० के नियमोपनियम	)।
वेदविरुद्धमतखण्डन	=)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण (नागरी)	)।।
,, (अंग्रेज़ी)	-)
भ्रान्तिनिवारण	-)
शास्त्रार्थ काशी	)।।
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश (नागरी)	)।।
तथा (अंग्रेज़ी)	)।
मूलवेद साधारण	५)
चारों वेदों की अनुक्रमणिका	१।।)
शतपथब्राह्मण मूल पूरा	४)
ईशादिदशोपनिषद् मूल	।।=
छान्दोग्योपनिषद् संस्कृत तथा हिन्दी भाष्य	३)
यजुर्वेदभाषाभाष्य	२)
बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्य	३)
नित्यकर्मविधि)।, एक रु० सैकड़ा.	